अध्याय -चार

संजीव के उपन्यासों में विस्थापन से उत्पन्न आर्थिक और राजनीतिक संकट

४.१- विस्थापन की समस्या और संजीव के उपन्यास-

व्यवस्थागत शोषण के कारण सर्वहारा समाज अर्थाभाव एवं गरीबी का शिकार बना है। गाँव का सामंती शोषण तो सर्वहारा को बेगारी करने के लिए मजबूर करता है। सर्वहारा समाज अगर बेगारी न करे तो खाएगा क्या? दाना-चबेना, खेतों का गन्ना, आम और मकई के भुट्टे आदि के सहारे वह जैसे-तैसे बसर करता है। सर्वहारा की बस्ती और उनका घास-फूस और खपरैल के घरौंदों को देखकर उनकी गरीबी का पता चलता है। धार्मिक आडंबर और सूदखोरी सर्वहारा समाज की गरीबी में इजाफा करती है। अर्थाभाव एवं गरीबी के कारण ही कलाकार अपनी जान जोखिम में डालकर करतब दिखाता है। ऊपरी तौर पर बोल्ड लगने वाले कलाकार भय और भूख का शिकार है। अर्थाभाव और भविष्य की असुरक्षा के कारण ही शोषक नारी कलाकारों का यौन शोषण करता है। आखिर पेट का सवाल जो है। कोलियरी में काम करने वाले मजदूरों के पास कोयला तो है पर राँधे क्या का सवाल बेचैन करता है।

कोलियरी का भ्रष्ट प्रबंधन, गुंडे, दलाल, ठेकेदार आदि के शोषणात्मक रवैये के कारण गरीबी दिन-ब-दिन और भयंकर बनती जा रही है। गरीबी के कारण ही आदिवासी सिलतोड़ी, चोरी, भीख का रास्ता अपना रहे हैं। औद्योगिक विकास के नाम पर इनकी सारी संपत्ति छीनी जा रही है। और औद्योगिक मुनाफों से इन्हें दूर रखा जा रहा है। प्रकृति प्रकोप और व्यवस्थागत शोषण के कारण सर्वहारा समाज डाकू बनने पर मजबूर है। जातिगत कर्म प्रधान संस्कृति के चलते आदिवासी समाज नीच काम करता है। उसके बदले इतना भी नहीं मिलता की भूख और तन ढकने की व्यवस्था हो सके। आदिवासी को पेट के लिए न जाने कितने कष्ट सहने पड़ते हैं। शोषक आदिवासी समाज की मेहनत की रोटी उड़ाते हैं। परिणामतः इन्हें भूख से जूझना पड़ता है।

'किसनगढ़ की अहेरी' उपन्यास का सर्वहारा वर्ग गरीबी से तंग आकर अक्सर मुंबई-कलकत्ता या पंजाब आदि स्थानों पर भागना चाहता है। शोषित अभाव ग्रस्तता के कारण दाना, चबैना, गुड खेतों का गन्ना, शकरकंद, आम, मकई के भुट्टे चुराकर या झूठा खाकर गुजारा करते हैं तो दूसरी ओर शोषक संन्यासी मुफ्त का भोजन, पकवान, दूध, फल और भक्तिनों का मांस खाकर धर्मांधता में फँसे आदिवासी समाज को मुक्ति दिला रहे हैं। आदिवासी समाज को पीने के लिए पानी तक उपलब्ध नहीं और शोषको के पंप सारा पानी उलीच रहे हैं। शोषकों

की फसलें टैक्टर और ट्रकों पर लदकर शहर जा रही हैं। हदबंदी की सारी जमीन शोषकों के द्वारा लूटने के कारण आदिवासी गरीबी का शिकार बन गया है।

गरीबी के कारण चूहे, मेंढक या साँप तक को खाने की नौबत आदिवासी पर आई। गोबरहा खाना और अपनी संतानों को शोषकों की सेवा में लगाना ही सर्वहारा का काम है। राजा अपने अर्थाभाव और दयनीयता को अभिव्यक्त करता है जिसमें गरीबी और शोषण के दंश है- "इस ग्रामीण शोषक सभ्यता ने दिया ही है क्या आज तक उस जैसे लोगों को उनका मल खाने वाले सूअर और उनके जानवरों के गोबर से बिना हुआ अन्न! घृणा और अपमान के दंश से तिलमिलाकर रह गया वह। इतने दिन ऊँची जाति की संगत में रहकर चूहे, मेंढक और साँप तक खाना छोड़ दिया है उसने। तब-तब ले आये छेड़, बकरी और मुर्गा-मुर्गी ?--------ऊ हू$$$! पहले ही बेटे-बेटी पाल पोसकर संपन्नों के कसाई घर में भेजता रहा----फिर वही काम----? गरीबी के कारण ही राजा का श्रम शोषण और पत्नी सोना का श्रम और यौन शोषण ज्योतिषी करता है विकास की सारी योजनाएँ शोषक भेड़ियों के मुख में समाने के कारण आदिवासी समाज भूख से बेहाल है। अर्थाभाव एवं गरीबी के कारण सर्वहारा समाज का दमन किया जा रहा है। मारपीट गाली-गलौज और उनकी मनचाही लूट तो शोषकों का जन्मसिद्ध अधिकार है।

'सर्कस' उपन्यास में अर्थाभाव एवं गरीबी कलाकार व्यवस्था के चाबुक पर करतब दिखाता है। चकाचौंध की इसी रंगीन दुनिया में कलाकार भूख और अर्थ का शिकार है। 'सर्कस' दर्शकों के मनोविनोद का साधन है तो कलाकार की रोटी का। कलाकार की जिंदगी बंजारों के समान भटकाव में या करतब दिखाते गुजर जाती है। अधिकतर कलाकार गरीबी लाचारी या अनाथ होने के कारण सर्कस में आते हैं- 'जिस उम्र में बाहर लडके-लड़कियाँ पढ़ते लिखते है वह उम्र तो यहाँ खेल दिखाते-सीखते बीत जाती है। स्कूल तो दरकिनार, घर और परिवार तक से छोटी उम्र में ही अलग कर दिए जाते है बेचारे।' बुलबुल का तो कहना है कि आदमी और जानवर केवल भूख के कारण ही सर्कस में काम करते हैं। भूखा रहने से दिमाग की सारी शैतानी भूख पर लाकर तोड़ी जाती है। फिर इंसान हो या जानवर जान पर खेलने लगता है।

सर्कस में भूखा रखकर ही पशुओं से लेकर आर्टिस्टो को ट्रेन अप किया जाता है। बुलबुल के लिए न सर्कस में आर्थिक सुरक्षा है न गाँव में। दोनों जगह जब वह नकारा जाता है तो अपनी अर्थाभाव की वेदना को बयान करता है- 'गाँव गया वहाँ कुआँ खोदा तो पानी ही नहीं मिला और यहाँ----। यह सचमुच मौत के कुएँ का खेल, खेल रहा हूँ। अकेला होता तो डूब मरता, अब बीबी व बच्चों के साथ हूँ तो कुछ न कुछ उपाय करना ही पडता है।'

राजू दादा सर्कस में केवल रोजी-रोटी के कारण ही आए हैं। "घर के तिरस्कार से निष्कृति ही सामूहिक तौर पर उसकी सबसे बड़ी समस्या थी और पेट भरने के लिए अन्न और तन ढकने के लिए मोटे-सोफे कपड़े से अधिक उसकी चाह भी नहीं थी कोई। रोजी-रोटी का अन्य विकल्प अगर रामू दादा के पास होता तो क्यों अपनी जिंदगी वे 'सर्कस' में खपाते। जोकरों की अर्थाभाव एवं असुरक्षित जिंदगी को 'सर्कस' में देखा जा सकता है- "देखो जोकरों की तनख्वाह यहाँ सौ से ज्यादा नहीं, वह भी अगर बाँध पाए दर्शकों को तो! रोज ही दो-चार आते हैं दो-चार जाते हैं। यानी खुश कर पाए तो दाना-पानी जुटा, नहीं कर पाए तो क्या,-----?" उपेक्षित कलाकारों के अर्थाभाव एवं गरीबी की अभिव्यक्ति 'सर्कस' है।

'सावधान! नीचे आग है' उपन्यास में शोषण के चलते सर्वहारा मजदूर भूख का शिकार बन गया है। अर्थाभाव के कारण मजदूर बौने छप्परों की कतार में एक साथ रहते हैं। एक बार यहाँ काम की खोज में आये मजदूर यही के बनकर जैसे-तैसे जीते हैं। काम करने पर भी पूरा पैसा नहीं मिलता, बीमारी में दवाइयों की भी व्यवस्था नहीं हो सकती। दिन भर गर्मी में काम करने से मजदूर घमौरियों और दूसरी बीमारियों का शिकार बनता है पर इलाज के लिए पैसे कहाँ से लाये और काम तो छोड़ नहीं सकता। यहाँ रांधने की समस्या का बयान करते हुए बूढा कहता है- 'हमेशा ही समझ लो, साब कोइला की कमी थोड़े है हिंया, कब कौन

खटके आएगा कोई ठीक तो है नहीं, जब चाहो दाल बना लो, जब चाहे भात। सवाल कोइला का थोड़े है सवाल है रांधे क्या----- कहाँ से ले आये? एक तो मजदूर बेकारी का शिकार है ऊपर से दारू और सूदखोरी ने उसे और भी कंगाल बनाया है। काम करने पर पैसा नहीं, तो जबर्दस्ती शराब दी जाती है। कोलियरी में दलालों और सूदखोरों का हफ्ता वसूली चलती है। अर्थाभाव के कारण बीमारी के इलाज के लिए घरेलू उपचार का मार्ग अपनाते हैं। अर्थाभाव एवं गरीबी के कारण ही मौत से दो-दो हाथ करते मजदूर खदान दुर्घटना का शिकार होते हैं।

छिन्न-मस्तिका संस्कृति में अक्सर गरीब मजदूरों की बलि दी जाती है। ऊधम और आशीष अपनी गृहस्थी का सपना देखते है तो अन्य सर्वहारा का विद्रूप चित्र है- "खूटियाँ अभी गड़ी नहीं है, गाड़ी जाएँगी। उन पर ड्यूटी के बसाते, काले कपड़े टांगे जायेंगे, सीमेंट के रेक पर राशन के डब्बे, कनस्तर सजेगे, जिनमें आटा और तेल, दाल और चावल नीचे तक पसरते नजर आयेंगे------ उठाऊ चूल्हे के धूँए से सारा घर धुआँ जायेगा, तब न पूरा होगा गृहस्थी का सरजाम।" सर्वहारा समाज को इसकी अपेक्षा अन्य जिंदगी क्या नसीब हो सकती है? मुर्गियाँ, मच्छर, खटमल और मक्खियों के आलम में उन्हें अर्थाभाव के कारण गुजारा करना पड़ता है।

मंगलू केवल सौ रुपये महीने पर साहब का नौकर बना हुआ है। जब भी वह 'परमानेंट' की बात करता है तो उसे लातों का प्रसाद मिलता है। गरीबी के कारण लातों का प्रसाद भी सर आँखों पर है। चंदनपुर में मृत आदिवासी मजदूरों के हिस्से का मुआवजा व्यवस्था ने हथिया लिया है। अगर मिला भी है तो ऊँट के मुँह में जीरा। प्रकारांत से विधवाएँ अपने पति का शव कंधे पर लादकर बच्चों की अंगुली पकड़कर रोटी की तलाश में भटक रही है।

'धार' उपन्यास आदिवासियों की गरीबी की दास्तान है। इस परिवेश में महेंद्र बाबू की तेजाब फैक्ट्री निर्माण होने के कारण सारा परिवेश तेजाब युक्त हो गया है। पेड़-पौधे तक बौने हो गये है और आदिवासी दमे के शिकार। इस परिवेश में चोरी, भीख, और सिलतोड़ी ही काम बचा है। अर्थाभाव एवं गरीबी के कारण आदिवासी समाज को थूक, बलगम और पेशाब पर पड़ी चीनी पुलिस के डंडे खाते हुए उठानी पड़ती है। अर्थाभाव के कारण आदिवासी नारियों का यौन शोषण किया जाता है। कूड़े से वे लोहा, पीतल बटोरकर उसे बेचकर जो कुछ अदना मिलता है उस पर बसर करते हैं। इनके हिस्से केवल कबाड़ी का काम ही है। मटन खाने की इनकी औकात नहीं है। जब कभी भी रेल से बछड़ा या बकरा कट जाता है तो उन्हें भोज खाने को मिलता है। रंडीगिरी के कारण भी इन्हें दो-चार पैसे मिल जाता है। शोषक अवैध कोयला निकालते है पर

जब सर्वहारा रोजी-रोटी के लिए कोयला निकालते है तो उन्हें उत्पीड़ित किया जाता हैं। ठेकेदार कम मजदूरी में इनको चूसते हैं। मैना गरीबी के कारण रेल के परिव्यक्त खाली डिब्बे में रहती है। आगे उसकी बेटी सितवा रहती है। पुरानी पीढ़ी की अपेक्षा नई पीढ़ी और भी खस्ताहाल में है- "डब्बा वही था मुसाफिर बदल गये थे। पुरानी पीढ़ी की जगह नई पीढ़ी पहले से ज्यादा जर्जर, ज्यादा बदहाल, ज्यादा अकेली।" जहाँ रोजी-रोटी का कोई प्रबंध नहीं वहाँ घर क्या कहें! काम की तलाश में वे गाँव-गाँव घूमते हैं। कहीं पर भी स्थाई रोजी-रोटी की व्यवस्था दुर्लभ है। ठेकेदारी में कुत्ते की तरह माँस चुनवाकर भी पेट की व्यवस्था नहीं हो सकती। दरवाजा-दरवाजा गंदा चाटने के लिए इन्हें घूमना पड़ता है। पहले चार-छह महीने काम चलता था इसलिए चोरी, भीख और इज्जत बेचने की जरूरत इन्हें नहीं थी आज रोजी-रोटी की व्यवस्था के लिए इन्हें सब करना पड़ता है।

गरीबी के कारण ही हैदर मामा सिलतोड़ी करते है और पैर कटा बैठे हैं। आदिवासी को लूटकर महेंद्र बाबू बेटी मनोरमा के दहेज के लिए दस लाख, बेटे राजेंद्र को आई• ए• एस• बनाने के लिए पन्द्रह लाख की व्यवस्था करते हैं और आदिवासी के बच्चे भीख माँग रहे हैं। हर तरह के शोषण के कारण गरीबी, भुखमरी, गंदगी अभाव और बेहाली का आदिवासी शिकार बना है। शराब और जुआ इन्हें और भी

कंगाल बना रहा है। ओझा के आतंक और धार्मिक आडंबर के चलते वे दरिद्रता में ही जीते और मरते हैं। आदिवासियों की तंगहाली के कारण ही ईसाई धर्म इन्हें अपने मुँह में फँसा रहा है। गरीबी के कारण बेमेल विवाह पर भी पिता राजी होते हैं। अपनी बेटी तक को बेचते हैं। दोनों हाथ कटा आदमी मंगर को पत्र लिखाते हुए कहता है "लिखो की रमिया चौदह साल की हो गई। रमिया के लिए उधर कोई लड़का मिले तो बताना। चालीस-पैतालीस का भी हो तो कोई बात नहीं लेकिन पाँच सौ से कम नहीं लेंगे। यहाँ तो भीख और पुलिस की दलाली करके जुगाड़ करना पड़ता है। सिलतोड़ी और चोरी से कोयला काटना दोनों ही जोखिम भरा काम है। कभी-कभी पेट की आग बुझाने के लिए आदिवासी कौए, बगुले, सारस, मैना और लोमड़ी आदि का शिकार करते हैं।

आदिवासियों ने अपनी किस्मत शोषकों के पास बंधक रख छोड़ी है। इसी का परिणाम है कि वह रोटी के लिए मोहताज है। भोज के बाद बचा खुचा भात और मांस बच्चों और औरतों के लिए आदिवासी अगले दिन का इंतजाम करते हैं। भूख के इंतजाम के लिए वह रेल के डिब्बे में खपड़ा बजा-गाकर पैसे माँगते हैं।

'पॉव तले की दूब' उपन्यास के आदिवासी नैसर्गिक साधन सामग्री के दोहन के कारण आज कंगाल बन गए हैं। उपन्यास का 'पंच पहाड़' गरीबी के कारण शापग्रस्त लगता है। अरण्यमुखी संस्कृति

और उत्सव धर्मिता इन्हें और भी दरिद्रता की खाई में ठेलती है। शरीर के लिए कपड़ा और पेट के लिए रोटी नहीं फिर भी शराब और उत्सव छोड़ना इन्हें मंजूर नहीं। सरकार ने प्लांट के लिए इनकी जमीन का अधिग्रहण किया है। न नौकरी न मुआवजा। अब वह कैसे बसर करें? आदिवासियों की जमीन का मुआवजा अफसर खा रहे हैं। साधन संपत्ती के अभाव में आदिवासी कुपोषण और रोग का शिकार बन गए हैं। और अंधविश्वासों के कारण इन पर भूतों और डायनों का साया मडराता है। कथावाचक अपनी आँखों से आदिवासियों की खस्ता हालत का बयान करते है- "कई लड़के लड़कियाँ और बूढे लकवे के मारे से दिख रहे थे और उस पर उनके स्याह चेहरों की भयावह उजली आँखें! भरी दुपहरी मुझ पर प्रेतों और डायनों का साया मडराने लगा।" औद्योगिक प्रदूषण के कारण आज एक चौथाई अनाज पैदा नहीं होता। परिणामतः भूखे मरने की नौबत इन आदिवासियों पर आई है केवल दो प्रतिशत लोगों को रोजगार मिला है। बाकी का क्या?

सोने की धरती का दोहन करने के कारण आदिवासी कंगाल बन गये है। इसी भूमि से प्रदेश को अधिकतर आय होती है और यहाँ के आदिवासी आदिम जीवन जी रहे हैं। रोटी, कपड़ा, दारू और शिक्षा आदि इनसे कोसों दूर है। सरकार केवल इनके विकास की घोषणाएँ और कोरी योजनाएँ बनाती है जो कागज पर ही शोभा देती है या भाषणों में। औद्योगिकरण और शोषक व्यवस्था ने इनके जीवन में घुसपैठ की है वे

क्यों इस सोने की धरती को छोड़ने लगे। अपनी कंगाल जिंदगी का बयान करते हुए फिलिप कहता है- "प्रदेश की दो तिहाई आय हमसे होती है और हमारी हालत! न तन पर न साबुत कपड़ा, न पेट में भरपेट भात, दवा-दारू, पढ़ाई-लिखाई की बात छोड़ ही दीजिए।" इस धरती का दोहन करके शोषक मालामाल हो रहे है और इस धरती की संतान मानवीय जीवन जीने के लायक नहीं रही। इस सोने की धरती पर शोषक साँप कुंडली मारकर बैठे हैं। आदिवासियों की जमीन पर कारखाने लगे है और इन्हीं की भागीदारी कारखानों से खत्म की गई हैं। अब जमीन के अभाव और रोजगार की किल्लत के चलते विस्थापन की समस्या उन पर है। अर्थाभाव के कारण गुफानुमा खपरैल में वे जानवरों के समान रहते हैं। कपड़े के नाम पर चिथड़ो में जैसे-तैसे वे लज्जा रक्षण करते हैं, वे इतने गरीब थे कि कपड़ों के नाम पर चिथड़े का कच्छा पहने हुए थे, पुट्ठे तक खुले हुए। औरते जैसे-तैसे बदन ढके हुए थी। बच्चे कंगालों जैसे। एक तो जमीन का अधिग्रहण, ऊपर से नौकरी नहीं और मुआवजा अफसर उड़ा लेते है तो क्या हालत हो सकती हैं?

आदिवासी भूख से बेहाल है और सिन्हा अपनी शान-शौकत के लिए देश-विदेश से गुलाब के पौधे मगवाते हैं। सिन्हा के बेटे की पार्टी में आदिवासी बालक अपने पिता के साथ जूठन ले जाने के लिए आता है। गरीबी के कारण इनकी आँखें राख-सी जर्द बन गई हैं। ऐसा

लगता है कि वे अभी-अभी पहाड़ी गुफा से बाहर निकले हैं। सिन्हा साहब को काला गुलाब तो चाहिए काले आदिवासी बच्चे नहीं। शोषकों के पास जरूरत से ज्यादा पैसे हैं तो आदिवासियों के पास जरूरत को पूरा करे, इतना भी नहीं। शोषण के कारण झारखंड के मेझिया गाँव वाघामुडी के आदिवासी कंगाल बन गए हैं। माँझी हड़ाम की अठारह साल की बेटी जानकी को लकवा मार गया है। उसका हाथ-पाँव और चेहरा मरीज के समान सूख गया है पर गरीबी के कारण वे उसका इलाज नहीं करा सकते।

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में जमीदारों के पास हजार-हजार बीघा जमीन है और आदिवासी समाज उनकी गुलामी में जीता है। छिट-पुट काम करके या बेतों का झौवा बुनकर वे जैसे-जैसे बसर करते हैं। नारायणी नदी का प्रकोप और शोषण के कारण आदिवासी समाज गरीबी का शिकार बन गया है। गरीबी का मुख्य कारण भूमि के असमान वितरण में है। जहाँ पाँच प्रतिशत लोगों के पास नब्बे प्रतिशत जमीन और बाकी साधन सामग्री और जमीन पर भी अगर जमीदारों का ही कब्जा हो तो उस परिवेश में आदिवासी कंगाल नहीं बनेगा तो और क्या बन सकता है? भूदान आंदोलन में दान की गई जमीन भी आदिवासियों से शोषक जबरदस्ती कब्जिया रहे हैं। अर्थाभाव गरीबी और शोषण के कारण आदिवासी डाकू बनने के लिए विवश हैं। काली ठेकेदारी

में महीने भर काम करता है। पैसे माँगने पर उसी की पिटाई की जाती है। जहाँ बेगारी करनी पड़ती हो वहाँ आदिवासियों की दशा और भी दयनीय बन जाती है।

आदिवासियों के बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था यहाँ नहीं है। वे बड़े होकर एक तो डाकू बनते है या जमीदार की गुलामी करते हैं। मलारी के बच्चे को जब कुमार ले जाना चाहता है तब मलारी के वक्तव्य से उसकी गरीबी का पता चलता है- "ले जाइए ना हाकिम। रुक काहे गए? अरे हमारा पास रहेगा तो चोर, डाकू बनेगा नहीं तो जमीदार का हरवाह, चरवाह, चाहे बनिहार ओकरा से तो यही निमन(अच्छा) है कि आप ही ले जाये। कम से कम कायदे का आदमी तो बनेगा।" श्याददेव को उसके पिता खेत बंधक बनाकर और कष्ट करते-करते केवल इंटर तक ही पढ़ा सकते। डाकू अपने दल में ले लेते हैं। मर्मांतक मौत मिलती है। यह इलाका गरीबी से अभिशप्त है। घरों के नाम पर फूस के घरौंदे या खपरैल में वे जीते हैं। कपड़ों के नाम पर केवल लूंगी, गमछे, धोती आदि है। गरीबी के कारण वे असमय बीमारी का शिकार बन रहे हैं। कुमार आदिवासियों की गरीबी का वर्णन करता है "सिर्फ फूस के घरौंदे या खपरैल, वे भी दूर-दूर। दूर से झाकते स्त्री-पुरुष, बच्चे, जीप के पास आते ही कछुए की तरह गर्दन घुसेड लेते लूंगी, गमछे, धोती, भगवे में लोग देश के आम गाँवो से ज्यादा दरिद्र, ज्यादा बीमार, ज्यादा निरीह।" सुख

सुविधाओं का अभाव और गरीबी के कारण विसराम की बेटी सर्पदंश से मर जाती है।

धान के बीज डालने का समय है पर घर में धान का एक दाना तक नहीं। व्यवस्थागत शोषण के कारण काली भी जमीन मालिक के पास बंधक है और गाभिन भैंस भी मालिक पकड़ कर ले जाते हैं। खेती में धान डालने तक का धान घर में नहीं है। मजदूरी का साधन बैल ठेकेदार और विभाग के अधिकारी लेने नहीं देते। थारुओं की रोजी-रोटी की व्यवस्था नहीं है। डाकू इन्हें सहयोग करने के लिए मजबूर करते है और पुलिस सर्च के नाम पर। रोजी-रोटी के अभाव में दरिद्र जीवन में बसर करते हैं। इनके खपरैल घरौंदों को देखकर इनकी दशा का परिचय होता है। मलारी के घर का वर्णन देखिए "ओसारा। ओसारे से लगा दरवाजा, दरवाजे के अंदर तीन कमरे, आँगन, माटी की भीत, खपरैल, जाल, ओखल, सूप, मकई के बालों के झोपे, लुगे-लत्ते, गगरी, बोतल, सिल, चूल्हा, बर्तन। केवल यह मलारी की दरिद्रता का ही चित्र नहीं है तो सभी की यही दशा है। नारायणी नदी के किनारे के गाँव साल दर साल मौत से जूझते हैं। नदी इनका सब कुछ निकल लेती है जो बचता है उसी के सहारे वे फिर से उठ खड़े होते हैं। आदिवासी की गरीबी के लिए नारायणी नदी का प्रकोप अधिक जिम्मेदार है डाकू-जमीदार, पुलिस तो है ही। दो-चार गाँव तो उसके पेट में समा ही जाते हैं। नारायणी नदी हर साल

तबाही मचाती रहती है। दो-चार गाँव को तो उसके पेट में जाना ही है। मकान ढहा, जमीन गई, क्या खाए, कहाँ रहे। इस परिवेश में नारायणी नदी का प्रकोप ही मूलतः गरीबी का मुख्य कारण है।

काली के डाकू बनने के पीछे अन्य कारणों के साथ-साथ गरीबी मुख्य कारण है। इनके घर की दशा इतनी खराब थी कि वह कपड़ों के लिए बेतिया महाराज पर निर्भर रहते थे। काली के घर के कपड़ों का इतिहास सुनकर उसकी गरीबी का पता चलता है। बेतिया महाराज अतिशय मोटे होने के कारण पखाने पर नहीं बैठ सकते थे और न ही पानी छू सकते थे। पखाने के बाद चूतड़ का मल साफ करने के लिए रोज एक नई-नकोर धोती मिलती थी। यही धोती बख्शीश के रूप में काली के पिता को मिलती थी। इसी धोती को सुखाकर पहनने से लेकर बिछाने और ओढ़ने तक के कपड़े बनते थे "महाराज की टांगों के बीच उस धोती से आरा की तरह रगड़कर उनका चूतड़ साफ किया जाता। बारी-बारी से वह धोती इन लोगों को बख्शीश मिलती। बाबा उसे किसी तालाब या गड़ही में अच्छी तरह धोकर सुखाकर घर लाते हैं। उन्हीं धोतियो को रगड़कर साड़ी बनती औरतों की, उन्हीं की कमीज, पजामा, कुर्ता, गंजी हमारे लिए। बहुत बाद तक उन्ही धोतियों को कत्थर, गुदड़, चादर, धोती इस्तेमाल करते रहे हम। गरीबी के कारण कपड़ों की किल्लत का यह विकल्प काली के पिता अपनाते थे। जिस दिन भाई को याद

आता, उसे बदबू से मितली आने लगती है। थारू जाति की औरतों का गरीबी के कारण कोई भी दबंग, जमीदार, जोनदार, लठैत, डकैत या अफसर उनका शिकार कर सकता था।

इस परिवेश में गरीबी की मिसाल को देखा जा सकता है। पुलिस के अन्याय-अत्याचार से सारा गाँव वीरान हो गया। थारू गाँव छोड़कर अन्य जगह पर चले गये हैं। रात के अंधेरे में टार्च की रोशनी में फूस और मिट्टी के घरौंदों में उनके टूटे-फूटे संसार का दर्शन होता है- "सूने घर। सूने खूटे। कुत्ते तक नदारद। बीसियों टार्चे जल उठी। बहुत कुछ पुरानी हाड़िया, टगे सूप, चलनी, तार-तार हो गए गुदड़ी, एक आध शीशियाँ, नेल पॉलिश की टूटी नन्ही शीशियाँ, चूड़ियों, आलता की खाली बोतल, टूटी दावातो, टूटे खिलौने, टुटे आईनों को छोड़कर ओसारा, घर, आँगन, देहरी, अटारी सब खाली, उपलों के मितहुर, फूस और मिट्टी के घरौदों को ले जा पाते तो उसे भी ले जाते। इस संसार को देखकर उनकी हैसियत का अनुमान लगाया जा सकता है।

'सूत्रधार' उपन्यास में आदिवासी समाज की गरीबी को देखा जा सकता है। नाई को सेवा टहल के लिए जूठन और नाममात्र पैसा दिया जाता है। महंगाई के अनुसार परदेश में दाढ़ी और बाल बनाने के पैसे में बढ़ोतरी होती है। गाँव में साल भर सेवा करने के बाद छाटल-छूटल पर काम चलाया जाता है। भिखारी अपनी गरीबी के संदर्भ में

सोचते है- "महंगाई कितनी बढ़ गई है। परदेश में एक दाढ़ी का एक अधेला मिल जाता है लेकिन हिंया तो साल भर 'जो हो' प्रतीक्षा करो और मिलेगा क्या छांटल-छूटल। ऐसी अवस्था में गरीबी से निजात पाना असंभव है। समाज की गरीबी को भिखारी अपनी कला के माध्यम से दर्शाते हैं। गरीबी के कारण कपड़ों की किल्लत है। नए कपड़े तो नहीं मिलते, पुराने कपड़े सिलाने के लिए सुई और धागा खरीदना भी समस्या है। भिखारी अपने नाटकों में गरीबी का वर्णन करते हैं- 'घर में न सुई न डोरा, लुगरी फटिल बा मोरा'। गरीबी के कारण बेटी तक को बेचने को पिता विवश है। गरीबी के कारण नाई-नाईन जूठे बर्तन साफ करके, आँगन बुहाकर, रात के बचे बासी भोजन पर बसर करते हैं। अर्थाभाव के कारण भिखारी के पिता की फटी धोती, पैबंद मटियल फतुआ और नंगे पैरों को देखा जा सकता है। भिखारी के परिवार की आर्थिक दशा का चित्र भिखारी के पिता के द्वारा स्पष्ट होता है। घुटनों तक फटी धोती, पैबंद लगा मटियाला फतुआ, नंगे पाँव, दीनता और अपमान के दंश से डसा चेहरा।

बिहार यू•पी• और बंगाल में गरीबी के कारण बेटी को मालदार खखूट बूढ़ों को बेचने के लिए पिता विवश हैं। जो कुछ खेत में थे वे रेहन पर धरे गए है और ऋण भी बढ़ गया है। इस समय बेटी के विवाह का प्रबंध कैसे हो सकता है। गरीबी की उपज बेटी बेचना है।

भिखारी बेटी बेचने की प्रथा के संदर्भ में कहते है- "एक गो आदमी का करजा रिन हो गया है, खेत रेहन पर धरा गया है और बेटी सेयानी हो गई है, बियाह करना है-------------- और बेटी बेच देता है। गरीबी न होती तो यह बर्बर प्रथा भी न होती।

'आकाश चम्पा' उपन्यास में निम्न मध्यमवर्गीय मास्टर मोतीलाल के अर्थाभाव की दशा का वर्णन होता है। अर्थाभाव के कारण पति और पत्नी में जंग का माहौल है। लालटेन में तेल नहीं है ढिबरी के प्रकाश में ही खाना और पढ़ाई करनी पड़ती है। मोतीलाल पढ़ाई के लिए ढिबरी की जरूरत महसूस करते है तो पत्नी गौरा खाना बनाने के लिए। पत्नी के व्यंग्य से उनकी गरीबी का पता चलता है 'लालटेन में तेल नहीं ढिबरी न मिली तो बन चुका खाना।' मोतीलाल जिस मकान में किराए पर रहते है वह मकान बारिश में टपकता है। अर्थाभाव के कारण उन्हें उस गंदी बस्ती में रहना पड़ता है। मोतीलाल की दो बेटियाँ दवाई के अभाव में मर गई थी।

गरीबी कंशी नामक लड़की रेल से लकड़ी बेचने शहर आती है। इस दौरान कितना वह पैदल सफर करती है। गरीबी में बच्चों को खिलाने की समस्या है। इनके बच्चे मक्खी और मच्छर की तरह मर जाते हैं। न तो रोटी है, न दवाई है। आदिवासी आपस में बातें करते हुए कहते हैं कि आदिवासियों की आबादी कम न हो इसलिए

सरकार इन्हें अधिक बच्चे पैदा करने का सुझाव देती है। पर वे अपनी गरीबी के चलते बच्चों को बचाने में असमर्थ हैं। आदिवासियों की अर्थाभाव की दशा को यहाँ देखा जा सकता है "गभमेंट कहता है जियादा बच्चा पैदा करो। हम मरद-जनी मिलकर पैदा भी करते है, पैदा तो कर दिया लेकिन खिलाएँ क्या? जियादा बच्चा माने जियादा गरीबी और सब एक-एक कर मर जाता है। मक्खी की तरह मर जाता है, मच्छर की तरह मर जाता है हम लोग। दवाई कहाँ से लाएगा? कुपोषण के कारण इन आदिवासियों की औसत आयु ३८ से ४० तक ही है।

मोतीलाल मास्टर की आर्थिक दशा कमजोर है। वह बच्चों को बेहतर जिंदगी दे नहीं सकते पर अपनी अर्थाभाव की खीझ जरूर उन पर निकालते हैं। ज्ञान पोखर की मछरी तक के लिए तरसता है। ज्ञान का यह पतन सभ्य मास्टर को कैसे भाता। पढ़ाई के समय इसी बात पर ज्ञान की पिटाई करते हैं। तब पत्नी मास्टर की गरीबी पर व्यंग करती है- "साँय के लहर सौतन पर! वाह रे बहादुर मरद। एक टुकड़ा मछरी तो खरीदने-भर की कुव्वत नै है और बच्चों को कसाई-सा पीट रहे हो। इज्जतदार, गियानी विद्वान हो न! इस गियान को बिछाए कि ओढ़े कि पेट में डालें? उस दिन खाना ही नहीं बना। पानी, गिलास, कटोरी, तसले और तवे पर टपकता रहा बारिश का पानी।"

'रानी की सराय' उपन्यास का गाँव आर्थिक पिछड़ेपन के लिए प्रसिद्ध है। रोजी-रोटी की किल्लत के चलते नौजवान कोलकाता, मुंबई आदि शहरों में भाग गये हैं। अर्थाभाव के कारण शोषक शोषित पर अन्याय-अत्याचार करते हैं। शोषित यहाँ गुलाम है और नारी दासी। गरीबी के कारण हलवाही और ठटवारी करके उन्हें बसर करनी पड़ती है। शरीफ की माँ सिलाई-कढ़ाई का काम करके परिवार चलाती है। माँ बीमार होने के कारण शिविर में शरीफ को दस पैसा, दस पैसा चिल्ला-चिल्लाकर बैलूनों को बेचता है। वंशी मिट्टी के खिलौने बेचता है। गरीबी के कारण सूरज को चरवाहे और माँ को दासी के समान काम करना पड़ता है। गरीबी के कारण ही माँ सूरज को पढ़ाने में असमर्थता दिखाती है। सूरज तो फटी-पुरानी चड्डी और बनियान में दिखता है। गरीबों पर उनकी दशा को लेकर व्यंग किया जाता है। शोषकों के बच्चे गरीब सूरज को पढ़ने आया देखकर उसकी औकात की याद दिलाते हैं- 'पढ़ने आया है--------? तू पढ़ेगा तो हमारे ढोर कौन चरायेगा?' याद कीजिए 'सूत्रधार' तू पढ़ेगा तो हमार बार के बनायेगा? गरीब बालक पढ़ नहीं सकता उसे तो शोषको के ढोर चराने है या गुलामी करनी हैं। साधन हीनता के चलते गरीब और क्या कर सकता है।

राजनीति अक्सर आदिवासी समाज विरोधी नीति अपनाती है। आदिवासी समाज को गुमराह करके अपना उल्लू सीधा करना

एकमात्र लक्ष्य भ्रष्ट राजनीति का है। पूँजीपति चुनाव में पार्टी फंड देते है और चुनकर आने के बाद पार्टी पूँजीवादी नीतियों को लागू कराती है। केवल घोषणाएँ करके आदिवासी समाज के साथ छद्म किया जाता है। सत्ता का अपराधीकरण हो गया है और अधिकतर पुलिस वाले चमचों की तरह काम करते हैं। न्याय भी आदिवासी वर्ग के नसीब में नहीं है क्योंकि न्याय पर सत्ता हावी होती है। सत्ता अक्सर आदिवासी समाज के दुखों को नष्ट करने की अपेक्षा शोषकों की पैरवी करती है। डाकू, गुंडे और माफिया का आधार लेकर सत्ता हासिल की जाती है। राजनीति में जाति का आधार लेकर टिकट बाटे जाते हैं और वोट माँगे जाते हैं। अपराधिक राजनीति ने जनतंत्र पर प्रश्नचिह्न लगाया है। आज का डाकू और गुंडा ही कल चुनाव जीतकर नेता बन जाता है। जनता की सेवा का ढोंग करके अपने पूर्व जीवन-मरण के प्रश्न पर चुप्पी साधे रहते हैं। आदिवासी समाज के विकास का पैसा अक्सर भ्रष्ट राजनीति हजम करती है। सर्वहारा समाज की दयनीय अवस्था के लिए भ्रष्ट राजनीति अधिक जिम्मेदार है। संजीव आदिवासी समाज के पक्षधर होने के कारण उनका शोषण करने वाली भ्रष्ट राजनीति की वे अपने उपन्यासों में पोल खोलते हैं।

'सावधान! नीचे आग है' उपन्यास में वर्णित चंदनपुर खदान दुर्घटना में एक हजार के आस-पास लोग मर जाते है और भ्रष्ट राजनीति हत्यारी व्यवस्था को बचाने में लगी है। राहत कार्य के अभाव में

मजदूर खदान में मर जाते हैं। इन दुर्घटनाग्रस्त लोगों के परिवार की भावनाओं के साथ खिलवाड़ करने के लिए प्रधानमंत्री और इस्पात मंत्री चंदनपुर का दौरा करते हैं। खदान में फसे मजदूरों को निकालने के न विशेष प्रयत्न किए जाते है न ही उनके परिजनों की सहायता की जाती है। प्रधानमंत्री चंदनपुर की आदिवासी जनता को गुमराह करते हुए झूठा विश्वास दिलाते हैं- "हम अपने तई कोई कोशिश उठा नहीं रखेंगे। यह चंदनपुर के हजारों भाई-बहनों-बच्चों का सवाल नहीं, यह पूरे देश का सवाल है। ईश्वर से प्रार्थना कीजिए कि हमारे बहादुर मजदूर भाई अभी भी जीवित हो।" केवल भाषण देकर क्या आदिवासी मजदूरों को बचाया जा सकता है? प्रधानमंत्री सर्वहारा समाज को अपने करुणामयी भाषा में संबोधित करते हैं। प्रधानमंत्री का भाषण समाप्त होते ही इस्पात मंत्री मजदूर के अभी भी जिंदा होने का दावा करते है और दूसरी खदान दुर्घटनाओं का हवाला लेकर मजदूरों के परिजनों में झूठा विश्वास पैदा करने की नाकाम कोशिश करते हैं। प्रधानमंत्री के समान इस्पात मंत्री भी भाषण में अपनी भ्रष्टता का परिचय देते हैं- "आपसे यही निवेदन है कि आप नाहक अफवाह न उड़ाएँ, न अफवाहों पर विश्वास करें, न उद्धार कार्य में विघ्न ही पैदा करें। इस वक्त देश के सबसे बड़े-बड़े दिमाग चंदनपुर के भाइयों की रक्षा के लिए जुटे पड़े हैं। हमने रूस, जर्मनी, इंग्लैंड, अमेरिका, जापान, पोलैंड भी खबर भेज दी है।" वास्तविकता यह है कि अभी तक खदान से पानी निकासी के लिए पंप भी चालू नहीं किये गये।

मजदूरों की मृत्यु की संख्या जानबूझकर कम बताई जा रही है। जब आदिवासी समाज प्रधानमंत्री और इस्पात मंत्री को पंप और वास्तविक मृत मजदूरों की संख्या को लेकर प्रश्न पूछना चाहते है तब भ्रष्ट राजनीति के गुंडे इनकी आवाज दबाते हैं। चंदनपुर में मंत्री आते है और मुआयना करके चले जाते हैं। कभी-कभी पंप में बालू और कचरा भर जाने से राहत कार्य बाधित भी होता है। जानबूझकर पानी निकालने में देरी की जा रही है ताकि अंदर के मजदूर मर जाए। अगर वे बच निकलते हैं तो वास्तविकता सामने आ सकती है। इसलिए पानी अंदर से कम निकाला गया है। तो वाशरी के बगल के तालाब या दामोदर नदियों से अंदर ही अंदर संपर्क हो गया था। चंदनपुर की खदान दुर्घटना से लेकर संसद में केवल सवाल-जवाब तलब किए जाते हैं- "लोकसभा में आज विपक्षी दलों ने खान मंत्री से सवाल किये क्या चंदनपुर के विधिवत इंस्पेक्शन होते रहें थे? जवाब मिला कुल तीस बार जाँच की गई और अंतिम मात्र दस दिन पूर्व।" इस समय केवल हंगामा मचाया जाता है।

'धार' उपन्यास में भ्रष्ट राजनीति शोषकों का समर्थन और सर्वहारा समाज का विरोध करती है। शोषक अवैध कोयला खनन करते है तो पता चलता है पर सर्वहारा अगर रोजी-रोटी के लिए मजदूरी योग्य ही कोयला बेचता है तो वह गैरकानूनी है। सरकार ने जन खदान को अब तक नहीं स्वीकारा है। मैना राजनैतिक भ्रष्टाचार का बयान

करती है- 'ई एम• पी• साला घूस वसूलने आ सकता है, रंडीबाजी करने आ सकता है। लेकिन हमरा मेहनत-मरक्कत का फल देखने में इनका नानी मरता है।" आदिवासी आपस में बातें करते हैं कि हम कभी वोट नहीं देने गए। हमारे वोट कोई और ही मारता है। भ्रष्ट राजनीति के चलते जनखदान को स्वीकारा नहीं जाता अगर इस जनखदान को स्वीकारा जाता तो बंद पड़े हजारों कल-कारखाने से आवाज उठेगी तुम नहीं चला सकते तो हमें शौप दो भ्रष्ट राजनीति नहीं चाहती। जन खदान राष्ट्र को समर्पित करने का निर्णय होता है और भ्रष्ट राजनीति के चलते उस पर बुलडोजर चलाया जाता है। जन खदान की जगह भ्रष्ट राजनीतिक पूँजीपति महेंद्र बाबू की अवैध कोयला खदान की मदद करती है।

'पॉव तले की दूब' उपन्यास में आदिवासियों की खस्ता हालत के लिए भ्रष्ट राजनीति जिम्मेदार है। सरकार आदिवासियों की जमीन अधिग्रहण करके औद्योगिक विकास करना चाहती है और आदिवासियों को अपने हाल पर छोड़ देती है। इस इलाके में प्लांट के कारण प्रदूषण फैला है पर सरकार को इसकी फिक्र नहीं है। आदिवासियों को बर्बाद करके गैर आदिवासियों को स्थापित करने की सरकारी नीति है। अलग झारखंड का भी हश्र होगा। कथावाचक अलग झारखंड पर अपने विचार अभिव्यक्त करते हैं- "आप क्या समझते है अलग झारखंड राज्य मिल जाने से सारी समस्याएँ हल हो जायेगी? कहीं ऐसा तो नहीं कि

भारत की आजादी की तरह स्वार्थी, शोषक तत्व आगे बढ़कर उसका लाभ हथिया ले जाएगा, ये दीन-हीन लोग जस-के-तस पड़े रह जायेगें? झारखंड आंदोलन को लेकर सब को एक मंच पर लाया जा रहा है। बाद में प्रधानमंत्री ने हंसदा को स्वयं बुलाया और उनके कार्यों की सराहना की। प्रधानमंत्री बोले आपने मार्ग दिखाया इसे पूरा करना सरकार का काम है। उन्होंने इस ओर काम करने का नाटक मात्र किया- "दिखाने के लिए स्टेप्स उठाए भी गए, फिर धीरे-धीरे सब ठप्प! कहाँ का आश्रम कहाँ के प्रयोग? उन्होंने जिस-जिस को पीठ पर हाथ रखा उसकी रीढ़ की हड्डी गायब हो गई। सब कुछ बट बिखर गया। इधर हंसदा सरकार के भरोसे शिथिल होते गये। जब जगे तो उन्होंने कांग्रेस पार्टी से संबंध विच्छेद किया।" हंसदा सरकार के भरोसे सारा कुछ छोड़कर निश्चित थे जब से सच्चाई से परिचित हुए तो कांग्रेस से संबंध विच्छेद कर बैठे। राजनीति केवल आदिवासियों की भावनाओं से खिलवाड़ करती है।

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में थारू आदिवासियों के शोषण के लिए राजनीति जिम्मेदार है। मिनी चंबल के नाम से कुख्यात 'पश्चिमी चंपारण' में राजनेता की डाकू है। थारूओं पर हो रहे अन्याय-अत्याचार को राजनीति नजरअंदाज करती है। राजनीति केवल डाकुओं का सफाया करने की घोषणा करती है। न तो राजनीति डाकुओं का सफाया करती है और न ही जमीदार, सेठ-साहूकारों के अन्याय-

अत्याचार को नष्ट करती है और न ही जमीदारों द्वारा लूटी गई जमीन सर्वहारा समाज में बाँटती है। राजनीति का अपराधीकरण हो गया है। अपराधों की सीडी चढ़कर ही सत्ता हासिल की जा सकती है। मंत्री दुबे सोचते हैं- "हूँ-------- धीरे-धीरे याद आ रहा सब कुछ, पिछले चुनाव में इन डाकुओं ने लाख-लाख वसूल कर लिए थे, पार्टी फंड में। अकेले अपने बलबूते पचास बूथ घेरे रहा बिंदा-------- लल्लन बाबू की किलेबंदी भरभरा गई और बिंदा, गोकुल और परशुराम के बूते जीत गए चुनाव।" परेमा विरोध में था इसलिए उसके नाम वारंट निकलवाया और पकड़वाने का पचास हजार इनाम भी घोषित किया गया। दुबे की बेटी की शादी में डाकू चार बोरा बासमती चावल, दू कनस्तर देसी घी, दू कनस्तर सरसों का तेल, चार कुंतल चीनी, रुपए, कपड़ा और सोने का भी इंतजाम करते हैं। दुबे स्वयं डाकुओं को छुपाकर रखता है। वह स्वयं अपना डाकू नेता रूप उजागर करते है- "प्रधानमंत्री ऐलान कर गए है बेतिया में डाकू उन्मूलन। अ हिंया उन ही के मिनिस्टर हम, हमरे ही घर में डाकू।" डाकू दुबे को जीताते है और दुबे डाकू को बचाते है सरकार डाकू उन्मूलन अभियान के लिए 'आपरेशन ब्लैक पाइथन' का निर्माण करती है। उसी सरकार में दुबे मंत्री है, जिसे डाकुओं ने चुनाव में जीताया हैं।

डाकू किसी न किसी राजनेता का आदमी है। वफादार होता है तो छूट दी जाती है। धोखा देता है तो एनकाउंटर किया जाता है।

डाकू पुलिस से इसलिए नहीं डरते क्योंकि नेता उन्हीं के बनाए हुए हैं। चुनाव का माहौल आते ही सभी राजनैतिक दल अपना वोट बैंक बचाने में मशगूल दिखाई पड़ते हैं। नई-नई घोषणाएँ की जाती है शराब, पैसा और हथियारों की मरम्मत की जाती है। मैन, मनी और मसल के बल पर चुनाव जीतना एकमात्र राजनेताओं का उद्देश्य है- "सभी राजनीतिक दल स्कूल मास्टरों, छात्रों, जाति के नेताओं, गुंडों, अफसरों और डकैतों को पटाने में लग गए हैं। नए-नए प्रलोभन दिए जा रहे हैं। शराब की भट्ठियाँ खुल गई है। हथियारों की जंग छुड़ाई जा रही है। स्प्रिंग ठीक किया जा रहा है। लाठियों को तेल पिलाया जा रहा है। डकैतों और अफसरों पर विशेष ध्यान देने के नाते उनके बड़े पैमाने पर पाला बदलने की संभावनाएँ व्यक्त की जा रही हैं।" राजनेता ही जब अवैध रास्तों का इस्तेमाल करके चुनाव जीते है तब आदिवासी समाज की खुशहाली की इनसे उम्मीद करना बेकार है।

परेमा मुख्यमंत्री का विरोधी है इसलिए मारा जाता है और परशुराम सहायक होने के कारण इसके प्रति नरमी बरती जाती है। वर्तमान समय में भ्रष्ट राजनीति के चलते थारुओं की हर तरह से मौत है। कथाकार 'प्रेम कुमार' 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में डाकू समस्या से भी भयंकर भ्रष्ट राजनीति को मानते हैं- "यह उपन्यास मुख्यतः दस्यु

समस्या पर नहीं बल्कि सीधे जनतंत्र की समस्या पर केंद्रित है।" जनतांत्रिक अव्यवस्था के चलते आदिवासी समाज प्रताड़ित है।

राजनीति में नालायक नेताओं की भरमार है। जिसे किसी भी तरह का ज्ञान नहीं वह अपनी कुर्सी बचाने में लगा रहता है। दुबे केवल प्रधानमंत्री की लाचारी और डाकुओं के बल पर मंत्री बन गया है। इन्हें शुद्ध बोलना तक नहीं आता और न ही आत्मसम्मान और शिष्टाचार का बोध है। कुमार दुबे की लाचारी पर व्यंग करता है- " ऐसे ही लोग मंत्री होते हैं? इन्हें तो शुद्ध बोलना भी नहीं आता। न सलीका, न सऊर, न ज्ञान, न आत्मसम्मान। तीन-तीन बार कुत्ते की तरह प्रधानमंत्री निवास पर भेंट लेकर हाजिरी देने जाना, ताकि कुर्सी बची रहे। फाइलों पर जरा भी ध्यान नहीं। कितने दयनीय थे मंत्री जी।" जो अपनी कुर्सी बचाने में स्वयं लाचार बना है वह क्या आदिवासी समाज की उन्नति करेगा, जिसमें मंत्री बनने के किसी भी तरह के गुण नहीं है। भ्रष्ट राजनीतिक कर्तव्यनिष्ठ पुलिस का अपमान करती है और भ्रष्ट पुलिस का सम्मान। उपन्यास में राजनीति का अपराधीकरण और अपराध का राजनीतिकरण होने के कारण आदिवासी समाज का कोई पालनहार नहीं है। थारू आदिवासियों पर जो पुलिस और डाकुओं के द्वारा अन्याय अत्याचार होता है उसे राजनीति नजरअंदाज करती है। सत्ता डाकू निर्मित के कारणों की

खोज करके उसे भ्रष्ट नहीं करती बल्कि डाकुओं को नष्ट करना चाहती है जो असंभव है। एक डाकू मरते ही दस नए पैदा होते हैं।

उपन्यास में व्यवस्था के जंगल को जंगल द्वारा दर्शाया गया है। राजनीति इस अव्यवस्था के जंगल को खाद देती है। सरकार डकैत उन्मूलन हेतु अभियान चलाती है पर डकैत बनने के कारणों पर गौर नहीं करती। डाकू परशुराम चुनाव जीतकर जनता का सेवक बन जाता है। जो स्वयं लठैत से डाकू, डाकू से विधायक, विधायक से मंत्री बना है। कुमार पहले परशुराम को समर्पण करने का सुझाव देता था अब परशुराम मंत्री बन कर उसकी नौकरी को चुनौती देता है। चुनाव तक डाकुओं को न पकडने का आदेश भी सरकार देती है। इस इलाके का विधायक एक भी बार इलाके की समस्या को लेकर विधानसभा में नहीं बोलता। डाकुओं को जाति की संख्या के आधार पर टिकट बांटे जा रहे हैं। डाकुओं की जाति और गैर डाकुओं की जाति का हिसाब लगाया जा रहा है। दुबे कहते हैं- "हमको आपका बिरादरी का ब्राह्मण भोट, काली सरदार की बिरादरी का थारू भोट, धाँगढ़, नोनिया, मल्लाह, दुसाध का सबका भोट चाहिए और परशुराम को अभी आप कुछ मत कीजिए। हम कान पकड़कर न उठाए, थूककर न चटवाए, एलेक्शन के बाद आपके सामने तो दोगला कहिएगा। और एक बात परेमवा भेटा जाए तो सूट कर दीजिएगा, बाकी हम सलट लेंगे।" राजनीति किसी भी स्तर पर की जा सकती है

इसका दुबे उत्कृष्ट उदाहरण है। चुनाव के पहले अपने-अपने जाति के गुंडे, डाकू, सेठ, अफसर, मंत्री, विधायक, सांसद आदि की गिनती की जा रही है।

परशुराम अवैध राष्ट्रीय से चुनाव जीतता है। अब कुमार को ही भ्रष्ट मुख्यमंत्री के हाथों अपमानित होना पड़ता है। डाकुओं की अपेक्षा कुमार को पब्लिक प्रॉपर्टी का नुकसान करने के जुर्म में जनता से माफी माँगने को कहा जाता है। भ्रष्ट मुख्यमंत्री आदिवासी जनता को गुमराह करते हुए कहते हैं- "हमको पटना में मालूम हुआ कि डाकू उन्मूलन का काम में पब्लिक प्रॉपर्टी को तोड़ा जा रहा है, जनता को बेवजह परेशान किया जा रहा है। हम डाकू मारने को बोले थे, शांतिप्रिय नागरिक का मकान-दुकान ढहाने को नहीं। जो कुछ हुआ उस पर हमारा दिल में चोट लगा हम एहीं से माफी माँगने पटना से उड़कर आए।" यही मुख्यमंत्री तंत्र-मंत्र की मूर्खता का शिकार है। सत्ता की भ्रष्टता और अपराधीकरण के कारण आदिवासी समाज शोषण का शिकार है। डाकुओं को जब नाम रखा जाता है तब रामजतन नोनिया की मान्यता है कि जो सत्ता में बैठे है वह डाकू ही हैं। सब गलत धंधे छोड़ दें तो हम भी छोड़ दें। नेता करे तो नेकी हम करें तो पाप। रामजतन नोनिया सत्ता की भ्रष्टता को बयान करते हुए कहता है- "अपने काम में लाज काहे का? अरे भईया दिल्ली से हियाँ तक जे भी कुर्सी पर बईठा है, सभे तो डाकू है।

सब बंद कर दें, हम भी बंद कर दे।" स्वयं भ्रष्ट राजनीति आदिवासी समाज का कल्याण कर सकती है। डाकू निर्मूलन राजनीति के लिए कठिन नहीं है पर डाकुओं के बल पर नेता चुनाव जीतते है फिर उनका संरक्षण करना इनका दायित्व है।

'आकाश चम्पा' उपन्यास में भ्रष्ट राजनीति के चलते आदिवासी को अपनी जान गवानी पड़ती है। अजय सिंह मोतीलाल का ही छात्र है जो जातिगत राजनीति और गुंडागर्दी के बल पर चुनाव जीतकर मंत्री बनता है। वीरेंद्र सिंह आदिवासी समाज की आवाज है। विधानसभा में सर्वहारा समाज की पैरवी करते हैं। यौन शोषण से उत्पीड़ित नारी को न्याय दिलाते हैं। जेल के प्रशासन को सुधारते हैं। अपने समय की भ्रष्ट राजनीति को वे खरी-खोटी सुनाते है जो आदिवासी समाज के प्रश्नों पर बोलने की अपेक्षा उनके पैसों का अपव्यय करती है- " आपके दिये हुए तमाम उपहार हम लौटा रहे है अध्यक्ष महोदय ताकि वे आपके और माननीय मंत्रियों के काम आ सके। हम यहाँ जनता की समस्याओं पर बात करने आये हैं। मुझे अधिकार है कि मैं आपसे पूछूँ कि उपहार कितने का है, किस बजट से आया है और जनता की गाढ़ी कमाई का पैसा लेने में हमें शर्म क्यों नहीं आती।" सर्वहारा समाज के हित चिंतक होने के कारण भ्रष्ट राजनीति में उनकी हत्या होती है। वीरेंद्र सिंह के हत्यारों को सजा दिलाने हेतु मोतीलाल अनशन पर बैठ जाते है तो अपराधिक

राजनीति उनकी भी हत्या करती है। रात दो बजे कोई फोन बजता है- "क्या-------? हम पकड़ के लाने को बोले थे और तुम ने मार ही डाला।" मोतीलाल की हत्या करके उसी नीम के पेड़ पर लटकाया जाता है, जहाँ पाँच क्रांतिकारियों को लटकाया गया था। सर्वहारा समाज को तो भ्रष्ट राजनीति अपना शिकार बनाती है पर जो उनके हमदर्द है उनकी भी आवाज बंद हो जाती हैं।

४.२ जल, जंगल और जमीन का संकट और संजीव के उपन्यास

जल, जंगल और जमीन का संकट आदिवासी समाज की प्रमुख समस्या है। संजीव के 'सावधान! नीचे आग है' , 'धार' , 'पाँव तले की दूब' और 'जंगल जहाँ शुरू होता है', उपन्यासों मे आदिवासी समाज की इस प्रमुख समस्या का विस्तार से चित्रांकन हुआ है- जिसका विवरण निम्नलिखित है----

'सावधान! नीचे आग है:-

झरिया रानीगंज कोयलांचल में कहीं-कहीं जमीन के अंदर वर्षो से आग धधक रही है। ठीक उसी तरह भूगर्भ में हिलकोरे लेते जलाशय भी हैं। इस उपन्यास में आग ही नहीं जलप्लावन की कोयला खदान दुर्घटना का वर्णन है। यह दुर्घटना नैसर्गिक न होकर प्रबंधन निर्मित है। उपन्यास की अधिकतर घटनाएँ उधम सिंह और आशीष के

माध्यम से अवतरित होती हैं। विभिन्न उपशीर्षकों में विभाजित उपन्यास का प्रथम खंड 'सतह के नीचे' और द्वितीय खंड 'सतह के ऊपर' है। उपन्यास के केंद्र में जलप्लावन की घटना है। कोयला खदान के अंदर ब्लास्ट के फलस्वरूप अचानक अंदर ही अंदर विशाल जलराशि खदान में भरने लगती है। खदान के अंदर काम करते मजदूर बेमौत मारे जाते हैं। उधम सिंह और अन्य कुछ मजदूर एयर पॉकेट में फँसे रहने के कारण इक्कीस दिनों तक मौत से जूझते हैं। आखिर वह भी हादसे का शिकार होते है एयर पॉकेट में वह मृत्यु पूर्व डायरी लिखते है जिससे खदान दुर्घटना की वास्तविकता का पता चलता है। मदद की आस में मजदूरों को मौत को गले लगाना पड़ता है। डायरी में खदान दुर्घटना का विवरण किया गया है जबकि अंतिम पृष्ठ में दुर्घटना का कसूरवार प्रबंधन को माना गया है। पर प्रबंधन स्वयं को बेगुनाह साबित करने के लिए सबूतों को खरीदती है या नष्ट करती है। सर्वेयर बाबू मणिचंद्र तथा मुकुल की हत्या इसी का परिणाम है।

खदान दुर्घटना में करीब एक हजार मजदूरों की मौत हो गई पर प्रबंधन तीन सौ इक्यावन का आंकड़ा घोषित करके फाइल बंद कर देता है। जर्मनी में इसी तरह की दुर्घटना में बारह में से ग्यारह व्यक्ति सही सलामत बचाये जाते है केवल एक मजदूर की मौत होती है तो चासनाला में एक भी नहीं बच पाता। जर्मनी में दुर्घटना को राष्ट्रीय आपत्ति

मानकर रात-दिन राहत कार्य चलता है। भारतीय दुर्घटनाग्रस्त मजदूरों का इतना सौभाग्य कहा दुर्घटना के उपरांत प्रधानमंत्री और अन्य मंत्री दुख जताते हुए घोषणाएँ करके चलते बने हैं। उधम सिंह द्वारा मृत्यु पूर्व लिखी गई दो डायरियाँ भी खरीद कर जलाई जाती हैं- "मगर आगे उसने यह लिखा है कि ये डॉक्यूमेंट श्री सिंह ने जमा नहीं किये बल्कि उन्हें लेकर मैनेजर या एरिया मैनेजर के पास गये। वहाँ श्री सिंह ने उनसे कहा कि आपकी जान मेरी मुट्ठी में है। अस्सी हजार डिमांड किया उन्होंने। आखिर सौदा चालीस हजार पर पटा और वे कागजात जला दिये गये उनके सामने।"

जाँच केवल औपचारिकता बन गई है। आशीष को ही झूठे इल्जाम में फँसाया जाता है, कि उसने सोमारू के आश्रित के रूप में अपरेंटिस की नौकरी पाई थी। उसके पीछे जाँच कमीशन और वारंट लगाया गया है। साथ ही गूंगी के साथ फर्जी संबधों को भी गढ़ा जाता है। उधमसिंह भी अपरेंटिस करने आते है और व्यवस्था का शिकार बन जाते है। मजदूरों को जमीन के अंदर आग, पानी और जहरीली वायु से सावधान रहना पड़ता है, तो बाहर भ्रष्ट प्रबंधन, सूदखोर, दलाल, भ्रष्ट व्यवस्था आदि से। वास्तविक मृत मजदूरों के नाम लिस्ट में न होकर फर्जी नाम है। शोषक मृत मजदूरों के हिस्से का मुआवजा स्वयं लूट रहे

है। कोयलांचल कास्मोपालिटन होता है चरित्रों के स्तर पर भी संस्कृतियाँ और भाषा के स्तर पर भी। उपन्यास उनका सटीक निर्वाह करता है।

गुंडे और सूदखोरों की धाक मजदूरों पर बनी रहती है। यह अपनी जाति और परिवेश के लोग बुलाकर मजदूर संगठन बनाकर प्रबंधन को मुट्ठी में कैद करते हैं। वास्तव में खदान कौन चलाता है इसका पता इस वक्तव्य से चलता है- "असल में खदान चलाते है माफिया सरदार चंद्र किशोर सिंह, गजाधर सिंह, अनूप सिंह, रामजी तिवारी, और बुझारत सिंह जैसे कंट्रेक्टर। इन्हीं की यूनियन, इन्हीं के सूदखोर, इन्हीं के दारूखाने, इन्हीं की पुलिस और इन्हीं का प्रशासन। जायज-नाजायज सब इन्हीं का है। मैनेजर, एजेंट तो इनकी इच्छा के गुलाम हैं। मजाल है इनकी हूक्त-उदूली करके आगे निकल जाये। खदान के नीचे पाटन में टॉप गियर तक और सिक्योरिटी से लेकर सेक्रेटरियट और मंत्री तक सभी महत्वपूर्ण बिंदुओं पर इनके आदमी तैनात है।" हादसे का अंदाजा लगाकर कम्पलेंट्स की गई थी पर सब बेकार। जो इमानदारी से काम करते थे ऐसे मजदूर खदान दुर्घटना के शिकार बन गये। जो चालक थे वे बहाना बनाकर कहीं निकल गये थे। कोयलांचल के सारे तकनीकी और मानवीय पहलू, जलप्लावन और एअर पाकेट के हार को इतना सजीव चित्रण इसलिए संभव हुआ क्योंकि संजीव कोयलांचल में पूरी तरह रचे-बचे है।

पूर्वार्ध में कोयला खदान की अभिशप्त जिंदगी है तो उत्तरार्ध में जलप्लावन के बाद की भयावह दशा और व्यवस्था का कमीनापन है। सर्कस की ही तरह कोयले पर लिखा गया यह हिंदी का पहला प्रमाणिक उपन्यास है।

धार:-

उपन्यास का परिवेश झारखंड का संथाल परगना है। छोटा नागपुर, बाँसगड़ा आदि क्षेत्रों में संथाल आदिवासियों के शोषण को उपन्यास के में वर्णित किया गया है। क्षेत्र में कोयला उत्खनन और औद्योगिक प्रदूषण जारी है। उपन्यास में अविनाश शर्मा आदिवासी संघर्ष को वैचारिक खाद देते है तो मैना प्रत्यक्ष संघर्ष का संचालन करती है। तमाम तरह के अवरोधों के बावजूद मैना अंत तक आदिवासी विस्थापन और सम्मान के लिए व्यवस्था का डटकर मुकाबला करती है। मैना आदिवासी शोषण की भुक्तभोगी होने के कारण स्वयं को भी दाँव पर लगा देती है। मैना के संघर्षशील चरित्र को देखकर धनिया और गदल की याद आती है। आदिवासियों के पास जीवन जीने का बेहतर विकल्प न होने के कारण वे सिलतोड़ी, चोरी या भीख को सहारा बनाते है। सहकारिता के परिप्रेक्ष्य में मैना, अविनाश शर्मा आदि जनखदान का अन्वेषण करते है। गरीबी, अपेक्षा और शोषण के विरोध में जनखदान का अविर्भाव

समाजवादी उत्तर है। जनखदान पूँजीवादी व्यवस्था, अवैध कोल माफिया और भ्रष्ट व्यवस्था पर तमाचा है।

उपन्यास के प्रारम्भ में रोजी-रोटी के अभाव में संथाल आदिवासियों का निर्मम शोषण किया जाता है पर उत्तरार्ध में जनखदान आत्मसंघर्ष की पहल करती है। 'सावधान! नीचे आग है' उपन्यास में जो मजदूरों की दुर्दशा होती है, 'धार' की जनखदान दूर्दशा का उत्तर है।। धार यानी आदमी की धार।

यहाँ न कोई मालिक है न कोई मजदूर। समाजवादी विचारधारा के तहत कोयले का खनन व वितरण किया जा रहा है। अपनी मजदूरी के अलावा बचे हुए कोयले को सरकार को सौंपने के लिए अलग रखा गया है। जन खदान पूँजीवादी स्वार्थ के खिलाफ समाजवादी लड़ाई है। जिसमें अविनाश शर्मा लेखकीय विचारधारा के पोषण है तो मैना युद्ध क्षेत्र की योद्धा। साम्यवादी काम और वेतन पद्धति यहाँ प्रचलित है, जिसमें देश और समाज के हित को केंद्र में रखा जाता है। प्रत्येक मजदूर नैतिक बल से जनखदान की लड़ाई लड़ता है। जनखदान को नष्ट करने हेतु भ्रष्ट माफिया सेना आक्रमण करती है पर मजदूरों की एकता के आगे उन्हें भागना पड़ता है।

जनखदान के कारण अब कोई शोषको के दरवाजे पर भीख माँगने नहीं जाता न हीं उसकी गुलामी करता है। रोजी-रोटी की

व्यवस्था के चलते रंडियो ने भी आत्मसम्मान की जिंदगी जीना प्रारम्भ किया है। जनखदान मानवता की मिशाल बनकर उभरी है- "जब मजदूरों ने खुद सत्ता सभाली थी तब लुटेरों तक की जान को खतरा महसूस होने लगा था, जिन्होंने वार किया, उन्होंने मुँह की खायी, न कोई मालिक था, न कोई सूदखोर, कि एक ऐसा आश्रय यहाँ था, जहाँ इलाके का कोई भी रोजी माँगने आया, उसे काम मिला, कोई दवा-दारू माँगने आया, और चंगा होकर गया।"

मैना आरंभ से ही विद्रोही है। जेलर के बलत्कार से उत्पन्न संतान को उसके मुँह पर फेंक देती है। पर बाद में एक बेबस माँ की तरह उसे स्वीकार लेती है। खुद पति चुनती है यह पति फोकल जब शोषक महेंद्र बाबू का गुलाम बनता है तो उसे छोड़ देती है। महेंद्र बाबू की तेजाब की फैक्टरी के विरोध में खड़ी होती है। पिता की असहायता पर उसे तरस आता है तो माँ को बर्बर डायन प्रथा के तहत मारने वालों को ही मैना ललकारती है। संथाल आदिवासियों के पानी के लिए पाइप तोड़ती है और रोजी-रोटी के लिए जनखदान का अन्वेषण करती है। जनखदान को भ्रष्ट सरकारी तंत्र माफिया से मिलकर बंद करा देता है। बुलडोजर चला देता है तो वह बुलडोजर के सामने जा खड़ी होती है। आदिवासी समाज अंधविश्वास का शिकार है। भूत-प्रेत तंत्र-मंत्र आदि खोखली बातों पर विश्वास रखते हैं। अंध मान्यताओं से बगावत करने

वाली औरत को शोषको से पैसे लेकर डायन घोषित करना जानगुरु ओझा की साजिश है। फिर भी आदिवासी उसी के भक्त बने रहने में धन्य हैं। हिंदी में संथाली भाषा का समन्वय दिखाई देता है। कोयला खदानों की भयावह दशा को यथा तथ्य प्रस्तुत करने हेतु मिथक और विंबो का प्रयोग किया गया है। पंत की कविता से रेणु ने 'मैला आँचल' उपन्यास का नाम लिया है। उसी तरह अरुण कमल की कविता की पंक्ति 'सारा लोहा उन लोगों का, अपनी केवल 'धार' को उपन्यास के शीर्षक के रूप में संजीव ने चुना है।

आदिवासी काम की तलाश में गाँव-गाँव घूमते है फिर भी सभी को स्थाई काम नहीं मिलता। जब आदिवासियों का स्थाई काम के अभाव में विस्थापन हो रहा है तब कोयला चोर, ठेकेदार, दलाल, शोषक गाँव में ही बने हैं। गाँव-गाँव की धूल छानने के बाद अपने आदिवासी भाइयों को संबोधित करती है- "हम जगह-जगह का ठोकर खा के आ रहा है। हर जगह एक-ई बात है। दू-चार को काम मिला है, हजारों बेकार; हमरा खातिर परमानिन्ट काम कई नई। चाहे ठीकादारी में मांस नुचवाओ, चाहे चोरी-छुपे कोईला काट के पुलिस और गुंडा का पैकेट भरो, चाहे चोरी करो। कुल मिलाकर कुत्ता का माफिक घूरा से, ऊ घूरा, ई नाली से ऊ नाली, ई दरवाजा से ऊ दरवज्जा का गंदा चाटो, आपस में एक दूसरे से लड़ो, लड़कर मरो। हम पूछता, आप दूसरा ठीकादार का ठीका

में काम कर सकता तो अपना ठीका काये नई चल सकता।" आदिवासी चेतना का ही परिणाम 'जनखदान' है। आदिवासी संघर्ष में मोड़ल, माझी, सलमा आदि आदिवासी चरित्र मैना के साथी हैं।

कोयला खदान और तेजाब की फैक्ट्री के चलते यहाँ प्रदूषण फैला है। तेजाब की फैक्ट्री ने तो पानी तक तेजाब युक्त बना दिया है। जिससे पशु-पक्षियों के साथ इंसान तक रोगों की चपेट में आ गए हैं। व्यसनाधीनता बाल-विवाह और नारी देह व्यापार के चलते यह इलाका नैतिक पतन का गढ़ बना हुआ है। लोकगीत और लोकनृत्य के साथ आदिवासियों का अट्‌टू संबंध है। पुलिस और अधिकारी भी न्याय देने की अपेक्षा शोषको के अन्याय का मूक समर्थन करते हैं। सिलतोड़ी का काम तो इन्हें जबरदस्ती करना पड़ता है। अगर न करें तो पुलिस जेल में बंद करती है या एनकाउंटर में मार देती है। मैना पर भी बुलडोजर चलाया जाता है। पर मैना मर नहीं सकती। एक मैना को कुचलते ही अनगिनत मैना संघर्ष के लिए उठ खड़ी होती हैं। मैना चेतना और संघर्ष की 'धार' है।

पॉव तले की दूब:-

आदिवासी विकास के बाधक तत्वों को संजीव 'पॉव तले की दूब' उपन्यास में उठाते हैं। उपन्यास की कथाभूमि झारखंड का मेझिया गाँव और बाघामुड़ी आदि हैं। आदिवासी समाज का जीवन, संस्कृति और संघर्ष को उपन्यास में अभिव्यक्त किया गया है। आदिवासी समाज को दोहरा संघर्ष करना पड़ता है। एक तो आदिवासी समाज के अंतर्गत अरण्यमुखी आदिम, जड़ आस्थाएँ, दूसरे बाहर की शोषक व्यवस्था। इनकी आदिमता के लिए जिम्मेदार है अरण्यमुखी संस्कृति और दरिद्रता के लिए उत्सवर्धिता। अंधमान्यताओं का भूत-प्रेत, मंत्र-तंत्र, जादू-टोना इन्हें भाग्यवादी बनाता है। सच्चाई से कोसों दूर यह आदिवासी पुरानी परंपराओं और कल्पना में विचरण करते हैं। औद्योगीकरण के नाम पर सरकार इनकी जमीन अधिग्रहण कर रही है। जमीन के बदले इन्हें कभी-कभी नाम मात्र का मुआवजा मिलता है तो कभी-कभी उससे भी हाथ धोना पड़ता है। जीवन निर्वाह के साधन जैसे- जल, जंगल, जमीन इनसे छीने जाने के कारण इन पर विस्थापन या भूखे मरने की नौबत आ गई है। एक तो इन्हें नौकरी मिलती नहीं क्योंकि न पढ़ाई, न हूनर, उस पर भी शराब के आदी। अगर एकाध आदिवासी को आरक्षित कोटे से कालीचरण किस्सू के समान नौकरी लग भी जाती है तो शराब और जादू टोने की मनगढ़ंत नामक कल्पना के चलते टिक नहीं पाती। सुदीप्त आदिवासी हमदर्द आदिवासियों को सुधारने में लगा है पर वह अपने

स्वप्न को पूर्ण होते नहीं देख सका। जब वह अपने सपनों को टूटता हुआ देखता है तो फस्ट्रेशन में वीरान जगह जाकर आत्महत्या करता है।

संजीव की औपन्यासिक कृतियों में यह उपन्यास उन्हें प्रिय है। लोकेल है पंचपहाड़ नामक गाँव। आदिवासी सुख-सुविधाओं से कोसों दूर हैं पंचपहाड़। शिक्षा को प्रगति का मुख्य आधार माना जाता है। उपन्यास के प्रारंभ हंसदा, मनीष और ईमानदार वामपंथी नेता के सफल-असफल प्रयोगों की सुदीप्त द्वारा सच्चाई जानने से होता है। बाघमुंडी के हंसदा के प्रयोग का एक चित्र इस प्रकार है: उसकी शिक्षा देखिए- 'पाठशाला है, बूढ़े, बच्चे, स्त्री-पुरूष सभी को अक्षर ज्ञान यहाँ अनिवार्य है। अब पूछोगे इतने मास्टर कहांँ से आए। तो यहाँ मास्टर जी का हाल यह है कि जो जितना पढ़ा है, अपने से कम पढ़े को पढ़ाता है। ज्यादातर मास्टर तो पहले दूसरे दर्जे तक ही पढ़े हुए हैं। अक्षर-ज्ञान के लिए उतना ही पर्याप्त है- है न अद्भुत? सुदीप्त, हंसदा, मनीष आदि पढ़े-लिखे लोग आदिवासियों को उनके अधिकार देने के लिए संघर्षरत हैं। विस्थापन, रोजगार और नौकरी की समस्या है। आदिवासी अलग झारखंड राज्य की माँग कर रहे हैं। क्या अलग झारखंड होते ही सारी समस्या हल हो जाएगी? क्या भारत की आजादी से यह जाहिर नहीं होता? भारत की आजादी के समान ही झारखंड की आज दशा है। सब कुछ वही, वैसा ही।

जमीन अधिग्रहण करके जो प्लांट बनाए जा रहे है उस परिवेश में प्रदूषण फैल रहा है। हवा, पानी प्रदूषित हो रहे हैं। प्लांट का प्रदूषित पानी मनसा नाले में छोड़ा जा रहा है। जिसे आदिवासी पीकर शारीरिक रोग का शिकार हो रहे हैं। पर इसकी आदिवासियों को कोई फिक्र नहीं है। डायन जैसी बर्बर कुप्रथा के तहत वह औरत को मारने तक पर उतारू हो जाते हैं।

उपन्यास की सारी घटनाएँ प्रथम पुरुष शैली में सुदीप्त और उसका पत्रकार मित्र समीर बारी-बारी से कहते हैं। आदिवासी और गैर-आदिवासी संघर्ष उपन्यास में दिखाई देता है। आदिवासियों के औजार में दिकू कब्जिया रहे हैं। आदिवासियों को लूटने का बाजार और एक जरिया है। व्यवस्था के खिलाफ कभी-कभी आदिवासी संघर्ष का रास्ता अपनाते हैं। पर मजबूरन उन्हें परास्त होना पड़ता है। आदिवासी बनाम दीकू, झारखंड बनाम इन्टक का संघर्ष तेज है। शोषितों में भी तर्करहित स्वार्थी युक्त सांप्रदायिक ध्रुवीकरण हो गया- " किसान की हत्या पर लाल और हरे झंडे ने स्ट्राइक करवाई तो दूसरी यूनियन के लोगों ने स्ट्राइक न होने दी। देखे यह रस्साकशी कहाँ जाकर खत्म होती है।" सांप्रदायिक ध्रुवीकरण के कारण तो शोषकों को और बल मिलता है। अब सर पैसा खाकर कोयले के नाम पर पत्थर और कचरा भेजते हैं। बाहर से आए अफसरों का नैतिक पतन हुआ है। न आदिवासियों का इलाज किया जाता

है न संरक्षण और न ही न्याय दिया जाता है। प्लांट में निर्मित बिजली के बावजूद आदिवासियों के इलाके में अंधेरे का आलम है।

आदिवासियों का प्रतिनिधित्व करने वाले भी सत्ता और व्यवस्था का हिस्सा बन जाते है। राजनैतिक भ्रष्टता की छूत उन्हें भी नहीं छोड़ती। फिलिप जैसा भावुक आदिवासी युवक व्यवस्था के खिलाफ बगावत करता है पर सुख्खू सिंह और प्रीतम सिंह के सामने उसकी बिसात ही क्या है। वह चाहकर भी जंगल, जमीन और खनिज की रक्षा नहीं कर सकता और स्वयं के द्वारा जंगल में लगाई गई आग में स्वयं ही जलकर मर जाता है। जो कोई व्यवस्था से पंगा लेगा उसका इसी तरह हश्र होता है। सुदीप्त को भी साजिश के तहत आदिवासियों का दुश्मन साबित किया जाता है। शीला के साथ संबंध हो या गोपाल के पिता को जेल भेजना इसमें सुदीप्त को बदनाम किया जाता है। उत्पाद कम होने का जिम्मा सुदीप्त के माथे मढ़ा जाता है। अकेला पड़ता जाता है सुदीप्त आखिर कारखाने से इस्तीफा देकर पंचपहाड़ के गुफनुमा एकांत में खुदकुशी करता है।

पंचपहाड़ वह क्षेत्र है जहाँ झारखंड आंदोलन की नींव रखी गई थी। उपन्यास की अधिकतर घटनाएँ डोकरी ताप प्रतिष्ठान में चलती है।। औद्योगिक विकास के नाम पर आदिवासियों को तहस-नहस किया जा रहा है। आदिवासी भी इस बात को जानते हैं पर कुछ चारा

नहीं है। फिलिप ध्वस्त किया होते आदिवासियों की वेदना का बयान करता है- "यह धरती, हमारी धरती सोना उगलती है और इस सोने की धरती कि हम कंगाल संतान हैं।" औद्योगीकरण के दुष्परिणामों से आदिवासी पूरी तरह से प्रभावित है। प्रशासन व्यवस्था और मालिकों की मिलीभगत ने आदिवासियों को और भी दयनीय अवस्था में ठेला है। उपन्यास में डायरी, पत्रात्मक, साक्षात्कार, नाटक आदि शैली का प्रयोग किया गया है। सुदीप्त आरंभ से ही शोषण का विरोधी रहा है। पिता को हलवाहों और चरवाहों आदि पर अन्याय अत्याचार करते देखकर उसका मन द्रवित होता है। पिता के शोषण का विरोध करता है तो पिता हाथ उठाते हैं। तब से सुदीप्त ने घर और बाल विवाहिता पत्नी को त्याग कर मामी के पैसों पर खड़कपुर से बी• ई• की। अब डोकरी ताप विद्युत प्रतिष्ठान में वह अफसर है। आदिवासी विकास की लड़ाई में वह असफल होता है। उसका व्यक्तित्व ही कंफ्यूज्ड है। कभी राजनीति में जाना चाहता है तो कभी साहित्यकार बनना चाहता है। बाल विवाहिता पत्नी को छोड़ देता है तो नर्स शीला के प्रति आकर्षित है पर उसे भी नहीं अपनाता। कालीचरण किस्सू हो या उसका बेटा गोपाल माँझी हड़ाम हो या उसकी बेटी या गाँव वाले या पार्टी वाले एक भी चरित्र खड़ा न करने की विफलता उसे खलती है डोकरी ताप को छोड़कर गुफानुमा एकांत में खुदकुशी करता है

उपन्यास की अधूरी पांडुलिपि समीर को उसी गुफा में मिलती है। समीर जब सुदीप्त के कार्य क्षेत्र में जाकर देखता है तो पता चलता है कि जो बीज सुदीप्त ने बोये थे उसमें अंकुर आ गये है। एकदम बंजर समझकर खुदकुशी करने वाला व्यक्ति उम्मीद और धीरज धरता है तो, वह पाँवो के नीचे अंकुरित होती दूब को देख पाता है। आज सुदीप्त का मिशन सफल हुआ है डोकरी में विकास की गंगा बहने लगी है पर इस गंगा का भगीरथ कहाँ है? जब माझी हड़ाम को समीर से सुदीप्त की मृत्यु की खबर मिलती है तो वह कहता है, तुम चुपचाप चले जाओ।' "लडने वाला फउज को ई पता नय चलना चाहिए कि ओकर सेनापति भाग गया। "उपन्यास के पात्रों की अपनी-अपनी निर्मित है, अपना-अपना अंत है। फिलिप भावुकता मे मर जाता है। सुदीप्त धैर्य भंग में आत्महत्या करता है। कालीचरण किस्सू और उसका बेटा गोपाल लक्ष्यहीन हो जाते है। शीला शोषकों के खेमे में चली जाती है। उपन्यासकार इन सारे कमजोर चरित्रों का विरोध करते है। साथ ही उनकी कमजोरी, भ्रष्टता और लक्ष्यहीनता पर वार भी करते है।। उपन्यास आदिवासी संघर्ष, शोषण को बयान करते हुए आदिवासी विकास की आशा अंत तक बनाए रखता है। विकास या परिवर्तन तुरंत नहीं होता उसके लिए सब्र की जरूरत होती है, शायद पैर तले 'दूब' उग रही हो--------। उपन्यास का सबसे सशक्त पक्ष है इसकी शैल्पिक बनावट। आधी कहानी का नैरेटर समीर है, आधी का सुदीप्त- पैतरेदार बुनावट और जादुई यथार्थ।

जंगल जहाँ शुरू होता है-

उपन्यास का कथा क्षेत्र' 'मिनी चंबल' के नाम प्रसिद्ध बिहार का पश्चिमी चम्पारण है। इस क्षेत्र के थारू आदिवासियों के शोषण की गाथा को उपन्यास में वर्णित किया गया है। थारुओं के डाकू बनने की विवशता को उपन्यास में दर्शाया गया है। 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में बाघ और पाड़ा को प्रतीकात्मक तौर पर लिया गया है जो शोषक और शोषितों का प्रतिनिधित्व करते है। थारुओं हुए थे पुलिस, डाकू, नेता और जमीदारों के अन्याय अत्याचार को उपन्यास में अभिव्यक्त किया गया है। जंगल ही उपन्यास का नायक है। व्यवस्था के जंगल को जंगल के द्वारा दिखाया गया है। इस परिवेश में डाकू निर्मूलन के लिए 'आपरेशन ब्लैक पाइथन' शुरू किया जाता है। चार विभागों मे से एक विभाग का प्रमुख डी• वाई• एस• पी• कुमार है। इस परिवेश की भौगोलिक और सामाजिक स्थिति डाकुओं के अनुकूल है। बिहार में 'फिरौती' आज फलता फूलता फायदेमंद उद्योग है। इस उपन्यास को लिखने के लिए संजीव कई-कई बर्षों तक जंगल का श्रम साध्य भ्रमण करते रहे है। कुमार कर्तव्यनिष्ठ पुलिस अफसर है। वह डाकुओं को मारने की अपेक्षा डाकू बनने की स्थिति को ही खत्म करना चाहता है। डाकुओं को। अच्छा इंसान बनने का मौका देना चाहता है, पर भ्रष्ट पुलिस तंत्र को वह अकेला सुधार नहीं सकता।उसका व्यक्तित्व डावांडोल दिखाई देता है।

मूरली पांडे इसी मिट्टी की उपज है जो ग्राम सुरक्षा दल के द्वारा डाकू समस्या का सफाया करना चाहता है।पर ग्राम सुरक्षा दल जब डाकू बनकर अत्याचार करते है तो दल को खारिज़ किया जाता है। मूरली पांडे अंत तक अपनी कोशिश में लगे है। मलारी का शिशु इन्हीं के 'सेवादल' में कल का भविष्य है। मालिक थारुओं की दरिद्रता और असहायता में शोषण करते है तो पुलिस ग्राम वासियों और थारुओं को डाकुओं के साथ मिला हुआ मानकर सर्च के नाम पर अन्याय अत्याचार करती है। अन्याय-अत्याचार में तो डाकू निर्मूलन का सपना देखना बेकार है। कुमार डाकू निर्मूलन के संदर्भ में कहता है- "मैंने बार-बार कहा है सर, डाकू समस्या कोई ऊपर का आवरण नहीं है कि आप उसे खरोंचकर फेंक दें।इनकी जडों में भूमि सुधार का न होना, ढीला प्रशासन, पॉलिटकल सेल्टर रोजगार की समस्या, धर्म, टिपिकल भौगोलिक स्थिति बगैरह है, ये सभी इटररिलेटेड है, सारा कुछ दुरुस्त कर दीजिए, रोग खुद-ब-खुद खत्म हो जायेगा।" काली को सुधारने हेतु कुमार विवेकानंद को दिमाग़ का कैसे नियत्रित रखे' और राहुल सांकृत्यायन का 'भागो नहीं दुनिया बदलो' दो किताबें भेट देता पर स्वयं ही अंत में पलायन करता दिखाई देता है। सत्ता की भ्रष्टता और अपराधीकरण के चलते ईमानदार पुलिसवालों का क्या हश्र होता है इसका जबाब है कुमार।

डाकू समस्या के मूल में प्रकृति का प्रकोप, दरिद्रता, शोषण, अंधश्रद्धा और अन्याय-अत्याचार है। नारायणी नदी की बाढ़ में सारा इलाका डूब जाता है। पर्वतीय घना जंगल और विस्तृत फैले गन्ने के खेतो ने डाकुओं को छुपने की व्यवस्था कर रखी है। जब वातावरण गर्म होता है तब डाकू पड़ोसी राज्य उत्तर प्रदेश या पड़ोसी देश नेपाल में पनाह ले लेते हैं। डाकू समस्या तो कभी भी खत्म की जा सकती है पर व्यवस्था डाकुओं को समाप्त नहीं करना चाहती क्योंकि इन्हीं की बदौलत मालिकों को चुनाव में लाखों रुपए मिलते हैं। फिर बूथ कैप्चर करते हैं और सत्ता में विराजित होते हैं। डाकू दरिद्रता की मार सहते-सहते पहले जमीदार के लठैत बनते हैं फिर दूसरों की गुलामी करने की अपेक्षा स्वयं बंदूक हाथ में लेकर अपहरण, बलात्कार, हत्या, फिरौती का रास्ता अपनाते हैं। डाकू पुलिस से इसलिए नहीं डरते कि नेता को उन्होंने चुनाव में जीताया है। चंद्रदीप सिंह का परशुराम, लल्लन बाबू का परेमा पहले लठैत थे जो वसूली और बेदखली का काम करते थे। अधिकतर डाकू पिछ्ड़ी जाति के शोषित हैं। पुलिस प्रशासन भी अपनी-अपनी जाति के डाकुओं को पकड़ने का नाटक मात्र करती है। पुलिस अफसर यादव डाकुओं को सुझाव देते हैं- "हत्या और डकैती छोड़कर अपहरण कीजिए और फिरौती वसूलिए---------। चंबल में ऐसे ही आसामी का अपहरण कर उतनी ही रकम की फिरौती मांगते हैं, जो वह दे सके। आप भी यही कीजिए। माने हेल्प अस टू हेल्प यू।" डाकुओं का जातीय रंग भी होता है।

व्यवस्था इन्हें वोट बैंक के लिए लड़ाती है। परेमा यादव जंगल में भागते समय नोट फेकता है। पुलिस पीछा करना छोड़कर नोटों को बटोरती है।

एक मान्यता है कि थारू जनजाति गौतम बुद्ध के शाक्य वंश से आते हैं। पर क्यों आज ये शांतिप्रिय शस्त्र उठा रहे हैं इसका उत्तर प्रतिशोध की आग में है। भौजाई का विसराम बहू के साथ पुलिस स्टेशन में बलात्कार किया जाता है। गाभिन भैंस चंद्रदीप सिंह हथिया लेते हैं। भाई विसराम अपने ही बंधक पड़े खेतों पर काम करता है। अब काली के पास डाकू बनने के अलावा अन्य कोई रास्ता नहीं है। काली को पकड़ने के लिए विसराम को तीन दिन तक सताया जाता है वह अपने पैरों पर खड़ा भी नहीं हो सकता उसे जेल की दीवार फाँदने के अपराध में एनकाउंटर में मारा जाता है। इन सारी घटनाओं से काली के अंदर का जंगल और घना होता गया। यह राह काली ने अपने लिए नहीं चुनी थी फिर भी उसे मजबूरन इस राह में आना पड़ा है। कुछ एक जगहों पर पुलिस ने गाँव पर इतना जुल्म ढाया है कि गाँव की थारू आदिवासी रातों-रात गाँव छोड़कर भाग गए।

थारू आत्मशुद्धि के लिए लखराँव पूजा करते हैं। थरुहट के मेले महत्वपूर्ण हैं। अंधश्रद्धा में इनका कोई मुकाबला नहीं है। विसराम की बेटी को साँप काटता है तो उसे जल में प्रवाह करते हैं। उनकी मान्यता है कि ऐसा कर नदी में बहाने पर नदी विष सोख लेती

है। देवी-देवताओं की कथाओं को भी उपन्यास में देखा जाता है। भोजपुरी भाषा का सौंदर्य और तुलसी निराला की काव्य पंक्तियाँ भाषा का सौंदर्य बढ़ाती हैं। साथ ही मिथकों का प्रयोग उपन्यास में प्राण फूँकता है।

'जंगल जहाँ शुरू होता है' राजनीति के अपराधीकरण और अपराध के राजनीतिकरण की औपन्यासिक कृति है। यहाँ जंगल स्थूल से ज्यादा एक मेटाफर है- बाहर से ज्यादा अंदर का जंगल। भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक और भ्रष्ट प्रशासन व्यवस्था के चलते यहाँ डाकू बनना मजबूरी बन गई है। असुरक्षा में भी वे परिवार का निर्वाह करते हैं। श्यामदेव तो फर्स्ट क्लास इंटर था पर गरीबी और अन्याय के चलते वह डाकू बन जाता है। परेमा, नोनिया और परशुराम भी कमोवेश मात्रा में इसी हालात के शिकार हैं। रेता इलाका डाकुओं की जन्मभूमि है। रेता को हर साल नारायणी नदी की बाढ़ बर्बाद करती है। परशुराम का सफर लठैत, डाकू, विधायक और मंत्री तक आता है। वह समांतर सरकार चलाता है। स्वयं डाकू होकर डाकू निर्मूलन का ढोंग करता है। चुनाव तक डाकुओं को पकड़ने पर पाबंदी है। कुमार को तो सत्ता आने पर राष्ट्रपति पदक दिलाने का प्रलोभन दिखाया जाता है। काली के साथ संबंध विच्छेद और परेमा को छूट देने का सुझाव तब भी दिया जाता है। पीपुल्स पार्टी के सत्ता में आने के कारण परेमा की हत्या और परशुराम को नवाजा जाता है। अगर नहीं आती तो परेमा की जगह परशुराम की हत्या होती।

परशुराम अपने लोक सेवक और देशभक्त रूप को बयान करता है- "परशुराम गरीबों की मदद करता है, जिस को इंसाफ नहीं मिलता उसको इंसाफ देता है। नियाव करता है, कराइम कंट्रोल करता है।"

मलारी अपनी भौजाई विसराम बहू जैसी दैनंदिन यातना में झुलसने की अपेक्षा डाकुओं की रखैल बनकर रहती है। इसी जीवन से ऊबकर वह अंत में नेपाल में मजदूर बनकर काम करती है और वहीं समाप्त होती है। थारुओं में स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा सुंदर होती हैं। यह भी इनके यौन शोषण का एक कारण है। दूसरा गरीबी और असुरक्षा औरतों की खरीद-फरोख्त में लिप्त जोगी और सोखाइन जैसे कितने चरित्र मिनी चंबल के चरित्र को प्रतिबिंबित करते हैं।

अध्याय चार

संदर्भ

१- किशनगढ़ की अहेरी संजीव प्रकाशक मीनाक्षी पुस्तक मंदिर नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-१९८१ पृ• सं•- ०४

२- सर्कस, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा• लि• ७/३१ अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली,प्रथम संस्करण-२००४,पृ• सं•- १५

३- सर्कस, संजीव, उपरोक्त पृ• सं•- २१

४- सर्कस, संजीव, उपरोक्त पृ• सं•- ३६

५- सावधान! नीचे आग है , संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा• लि• अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण -२०१८, पृ• सं•- ४४

६ - सावधान! नीचे आग है , संजीव, उपरोक्त पृ• सं•- ६७

७- धार, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा• लि• अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण-२०११, पृ• सं•- ११४

८- पॉव तले की दूब, संजीव, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, राजस्थान, प्र• सं•- १९९५ पृ• सं•- ८४

९- पॉव तले की दूब, संजीव, उपरोक्त पृ• सं•- ९२

१०- जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा• लि• अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-२०११, पृ• सं•- १७६

११- जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा• लि• अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-२०११, पृ• सं•- १०

१२- जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, उपरोक्त पृ• सं•- १३८

१३- जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, उपरोक्त पृ• सं•- १५२

१४- सूत्रधार, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा• लि• अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-२००४, पृ• सं•- ४७

१५ सूत्रधार, संजीव, उपरोक्त पृ• सं•- ८१

१६- सूत्रधार, संजीव, उपरोक्त पृ• सं•- ८९

१७- आकाश चंपा, संजीव, रे माधव पब्लिकेशन्स, गाजियाबादब राजकमल प्रकाशन समूह में शामिल, प्रथम संस्करण २००८ पृ• सं•- १८

१८- आकाश चंपा, संजीव, उपरोक्त, पृ• सं•- ५७

१९- रानी की सराय, संजीव, रे माधव पब्लिकेशन्स, गाजियाबाद अब राजकमल प्रकाशन समूह में शामिल और नेहा पब्लिशर एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर, संस्करण २००९, पृ• सं•- ३२

२०- सावधान! नीचे आग है , संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा• लि• ७/३१, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण २०१८, पृ• सं•- ९३

२१- सावधान! नीचे आग है , संजीव, उपरोक्त, पृ• सं•- ९४

२२- सावधान! नीचे आग है , संजीव, उपरोक्त, पृ• सं•- १०४

२३- धार, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा• लि• ७/३१, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण-२०११, पृ• सं•- ८४

२४- पॉव तले की दूब, संजीव, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, राजस्थान, प्र• सं•- १९९५ पृ• सं•- ९१

२५- पॉव तले की दूब, संजीव, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, राजस्थान, प्र• सं•- १९९५ पृ• सं•- ९६

२६- जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा• लि• अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-२०१०, पृ• सं•- १७९

२७- जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, उपरोक्त, पृ• सं•- १७८

२८- जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, उपरोक्त, पृ• सं•- १९२

२९- जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, उपरोक्त, पृ• सं•- २०१

३०- जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, उपरोक्त, पृ• सं•- २११

३१- जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, उपरोक्त, पृ• सं•- २२३

३२- जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, उपरोक्त, पृ॰ सं॰- २३४

३३- आकाश चंपा, संजीव, रे माधव पब्लिकेशन्स, गाजियाबादब राजकमल प्रकाशन समूह में शामिल, प्रथम संस्करण २००८ पृ॰ सं॰- ५९

३४- आकाश चंपा, संजीव, उपरोक्त, पृ॰ सं॰- ४४

३५- सावधान! नीचे आग है , संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा॰ लि॰ ७/३१, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण २०१८, पृ॰ सं॰- १०३

३६- सावधान! नीचे आग है , संजीव, उपरोक्त, पृ॰ सं॰- १०९

३७- धार, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा॰ लि॰ ७/३१, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण-२०११, पृ॰ सं॰- १२१

३८- धार, संजीव, उपरोक्त, पृ॰ सं॰- १३१

३९- पॉव तले की दूब, संजीव, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, राजस्थान, प्र॰ सं॰- १९९५ पृ॰ सं॰- १०९

४०- पॉव तले की दूब, संजीव, उपरोक्त, पृ॰ सं॰- ११३

४१- पॉव तले की दूब, संजीव, उपरोक्त, पृ॰ सं॰- २६

४२- पॉव तले की दूब, संजीव, उपरोक्त, पृ॰ सं॰- १५७

४३- जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा॰ लि॰ अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-२०१०, पृ॰ सं॰- १८८

४४- जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा• लि• अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-२०१०, पृ• सं•- १६१

४५- उपरोक्त, पृ• सं•- १६३